समयसार, ३२० गाथा, सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार। जयसेनाचार्यदेव की टीका चलती है। तीसरे पृष्ठ का, तीसरा पैराग्राफ हो गया। बराबर है? तीसरे में क्या कहा? इसलिये यह सिद्ध हुआ... अकेली चीज़ मक्खन अकेली चीज़ है। जिसे धर्म करना हो तो उसे परमस्वभाव-मोक्षस्वभाव जो त्रिकाल स्वरूप ध्रुव है, उसकी दृष्टि करने से ही सम्यग्दर्शन होगा। बाकी कोई दूसरा उपाय नहीं है। तो कहते हैं कि **इसलिए ऐसा सिद्ध हुआ - शुद्धपारिणामिकभावविषयक...** यह द्रव्यनय का विषय हुआ। ऐसे चार बोल पहले आये थे, यह पाँचवाँ बोल आया।

शुद्धपारिणामिकभावविषयक, अपना जो सहज ध्रुव ज्ञायक अभेद सामान्य नित्य एकरूप ऐसा जो तत्त्व है, उस तत्त्व को विषय करनेवाली, उस तत्त्व को ध्येय करनेवाली ऐसी भावना.... समझ में आया? वह भावना **उसरूप जो औपशमिकादि तीन भाव...** उसरूप पारिणामिकभाव त्रिकाल वह तो ध्रुवभाव है, वह तो ध्येय, विषय, लक्ष्य करनेयोग्य है। जिसे धर्म करना हो, सुख के पंथ में आना हो... समझ में आया? दुःख का नाश करना, यह भी नास्ति से बात है। सुख के पंथ में आना हो... अनादि से दुःखी है। समझ में आया? अपना अकषाय ज्ञायकस्वभावभाव को भूलकर रागादि, विकल्प आदि मेरे हैं, यही मिथ्यात्वभाव संसार का बीज है। समझ में आया? रागादि, पुण्यादि विकल्प मेरे हैं, यह मिथ्यात्वभाव है तो इससे रहित पारिणामिक मेरा है, यह सम्यक् भाव है। पण्डितजी!

भगवान आत्मा अपना ज्ञायकभाव पूर्ण ध्रुवस्वरूप अविनाशी पद को भूलकर रागादि विकल्प, चाहे तो महाव्रत का विकल्प हो या दया-दान का, भक्ति-पूजा का (विकल्प हो) परन्तु वह विकल्प दूसरा तत्त्व है। दूसरे तत्त्वसहित स्वतत्त्व है, ऐसी मान्यता मिथ्यात्व है, वह संसार का बीज है। उस मान्यता का नाश करना नहीं है। भगवान आत्मा पारिणामिकभाव है, उस ओर का झुकाव, ऐसी जो भावना, ऐसा जो मोक्ष का मार्ग

उसका विषय—ध्येय तो ध्रुव है। नन्दकिशोरजी! बात तो ऐसी है। लोगों को बाहर में... अन्तर चीज़ पाताल में महा भगवान पूर्णानन्द पड़ा है। समझ में आया? अन्तर-अन्तर पाताल में पर्यायबुद्धि छोड़कर जा, यह पर्यायबुद्धि छोड़कर। समझ में आया?

एक समय की पर्याय-अवस्था या राग या पर, वह तो कहीं दूर रह गया, उसकी रुचि में पड़े हैं, वे मिथ्यात्वभाव में हैं, निगोद के पंथ में पड़ने का वह पंथ है। समझ में आया? पन्ना है या नहीं? मनसुखभाई! दो हैं न? दो कहाँ से आये? न हो तो यहाँ से ले जाना। पढ़े, सुने तो सही। पालेज में ऐसा नहीं वाँचा जाता। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, परमस्वभाव भगवान पूर्ण ध्रुव को विषय करनेवाली भावना, **उसरूप जो औपशमिकादि तीन भाव...** आगे ज्ञानप्रधानता से क्षयोपशमभाव एक लेंगे, भाई! यहाँ दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों की अपेक्षा लेकर त्रिकाल वस्तु को विषय दर्शन ने किया, ज्ञान ने किया और उसमें लीन हुआ, ऐसा जो उपशम-क्षयोपशम, क्षायिकभाव, ये **तीन भाव वे समस्त रागादि से रहित होने के कारण....** देखो! लोगों को ऐसा लगता है कि समस्त रागादि से रहित तो तेरहवें-बारहवें (गुणस्थान में) होते हैं। अरे... यह कहाँ? यह तो दूसरी बात है। यह तो पर्याय का ज्ञान में राग का जो निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध था, वह बारहवें में छूट जाता है। यहाँ तो दृष्टि में से रागादि सब छूट गया, (उसकी बात है)। समझ में आया?

श्रोता : चौथे गुणस्थान में?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ; यहाँ पहले कहा न? दो बात तो पहले की है कि विकल्प राग है, पुण्य है, उस सहित मैं हूँ, वह तो मिथ्यात्वभाव है। उसकी संधि की बात १४ वीं गाथा में कही। पुरुषार्थसिद्धि-उपाय की चौदहवीं गाथा। समझ में आया? भगवान चैतन्यतत्त्व निर्मल ज्ञान भगवान, ज्ञान भण्डार परमात्मा, वह तो मोक्षस्वरूप ही है। आयेगा, देखो! शक्ति के बाद में आयेगा।

ऐसी दृष्टि बिना एक सूक्ष्म में सूक्ष्म विकल्प जो राग है, गुण-गुणी का भेद, गुणी-भगवान आत्मा द्रव्य और उसमें रहनेवाला ज्ञायकभाव, ऐसा भेदरूप जो विकल्प है, वह विकल्प अर्थात् राग है। रागसहित आत्मा को मानना, वह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा!

गजब बात! त्रिकाल शुद्धभाव में अशुद्धतासहित मानना... दूसरी भाषा से लें तो... आहाहा! शान्ति से समझने की चीज़ है। यह तो किसी समय वँचती है। यहाँ तो क्लास के समय वाँचने का विकल्प था तो क्लास के समय आ गया। बात तो ऐसी है। ऐसी वाणी, ऐसा वीतराग का भाव किसी-किसी समय निकलता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : वाणी क्रमबद्धपर्याय में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो उसके कारण है।

श्रोता : किसी समय ऐसा होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसी समय वह परन्तु ऐसा होता है। आहाहा!

यहाँ तो भगवान आचार्य महाराज, परमेश्वर का जो भाव है, उसे स्पष्ट करते हैं। मर्म-रहस्य (स्पष्ट करते हैं)। भगवान! तेरी चीज़ जो पूर्ण है, उसे विषय करनेवाली, ध्येय करनेवाली भावना तीन रूप है-उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक। यहाँ तीन कहते हैं, पश्चात् ज्ञानप्रधान में यह क्षयोपशमज्ञान (लेंगे)। यह साधक की बात है न? यह क्षायिकभाव ऊपर के (गुणस्थान की) बात नहीं है। केवली के क्षायिकभाव की यहाँ बात नहीं है। यहाँ तो साधकभाव में जो उपशम, क्षयोपशम क्षायिक है, उसकी बात है। क्या कहा समझ में आया?

यह उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक जो तीन भाव कहते हैं, वह क्षायिक, केवली के क्षायिक की यहाँ बात नहीं है। समझ में आया? यहाँ तो निचली श्रेणी में जो सम्यग्दर्शनस्वरूप परमात्मा आनन्द का धाम हूँ - ऐसी दृष्टि हुई, उस दृष्टि को उपशमभाव कहते हैं, क्षयोपशमभाव कहते हैं और क्षायिकभाव कहते हैं। यहाँ तो निचले (गुणस्थान की बात है)। क्योंकि उसके तीनों बोल में ज्ञान की कथनशैली आयेगी तो उन तीनों में क्षयोपशमज्ञानरूप पर्याय स्वसंवेदन है - ऐसा कहेंगे। समझ में आया?

कहते हैं कि तीन भाव समस्त रागादि से रहित है। सूक्ष्म में सूक्ष्म विकल्प उठता है, उससे भी भगवान पर्याय में अत्यन्त भिन्न है। द्रव्य तो भिन्न है ही। समझ में आया? द्रव्य तो पर्यायरहित है, परन्तु यह तो पर्याय रागरहित हुई। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! गजब बात, भाई! मार्ग तो संक्षिप्त में बहुत है परन्तु लम्बी-लम्बी बात कर दी है। इसलिये कहीं पता नहीं लगता।

त्रिकाल ज्ञायकभाव को विषय करके, ध्येय करके जो पर्याय उत्पन्न हुई तो कहते हैं कि द्रव्य में तो वह पर्याय भी नहीं, परन्तु वह मोक्षमार्ग की पर्याय जो सम्यग्दर्शनादि प्रगट हुए, उस पर्याय में राग नहीं। शोभालालजी! पन्ना रखा है न? बाद में घर ले जाना, हों! वहाँ बराबर विचार करना। आहाहा! कहते हैं ऐसे **रागादि से रहित होने के कारण....** देखो, कारण को सिद्ध करना है, भाई! परन्तु रागादिरहित वह चीज़ है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और स्वरूप-सन्मुख के आचरण की दशा, ये तीनों पर्याय, विकल्प अर्थात् अशुद्धता से रहित है। समझ में आया? ऐसा होने से उसका क्या नाम दिया? देखो! **शुद्ध-उपादानकारणभूत...** यह पर्याय की बात है। समझ में आया? शुद्ध-उपादानकारणभूत-ऐसा लिया है न? यह पर्याय का शुद्ध उपादान। द्रव्य का त्रिकाल शुद्ध उपादान पहले आ गया। यहाँ तो त्रिकाल भगवान आत्मा, परमात्मा का मूलमार्ग, द्रव्य को ध्येय बनाकर जो पर्याय उत्पन्न हुई, वह पर्याय **शुद्ध उपादानकारणभूत होने से।** शुद्ध उपादान। पहले अशुद्ध निकाल दिया न? भाई! अशुद्धता जो व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प है, वह तो निकाल दिया। समझ में आया? आहाहा!

भगवान आत्मा अपने ध्रुवध्येय पर दृष्टि पड़ते ही, और ज्ञान की वर्तमान पर्याय ध्रुव को ज्ञेय करते ही, और स्वरूप में एकाकार चारित्र की दशा उत्पन्न होते ही राग का अभाव (हो जाता है)। समझ में आया? यह विकल्प व्यवहाररत्नत्रय कहते हैं न? व्यवहारमोक्षमार्ग, मोक्षमार्ग। यह व्यवहारमोक्षमार्ग इसमें है ही नहीं- ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : तो फिर यह क्या है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह राग है, वह बन्ध का कारण है। बन्ध के कारण का पर्याय में अभाव है क्योंकि आत्मा अबन्धस्वरूप है, अबन्धस्वरूप है-मोक्षस्वरूप ही है, लो!

श्रीमद् में आता है न? भाई! दिगम्बर के आचार्यों ने ऐसा माना है कि.... आता है? एक बार आया था, यह आत्मधर्म में आ गया है। मोक्ष समझ में आता है। देखो! श्वेताम्बर के आचार्य की बात कहीं नहीं ली है क्योंकि उसमें यह है नहीं। समझ में आया? कौन सा वर्ष? ३२ में आता है? ४९८ पृष्ठ, अमुक आचार्य ऐसा कहते हैं कि.... देखो! श्रीमद् को भी यह ख्याल आ गया। श्वेताम्बर की शैली का ख्याल वहाँ छोड़ दिया। अमुक आचार्य

ऐसा कहते हैं कि—दिगम्बर के आचार्यों ने ऐसा स्वीकार किया है कि... दिगम्बर सन्तों-आचार्यों ने ऐसा स्वीकार किया है कि.... दिगम्बर के आचार्यों ने। बहुवचन है न? देखो! दिगम्बर सन्त सनातन मार्ग के साधक ऐसे मुनि-कुन्दकुन्दाचार्य आदि समस्त दिगम्बर आचार्यों ने ऐसा स्वीकार किया है कि जीव का मोक्ष होता नहीं। जीव का मोक्ष होता नहीं।

बात जरा सुनो! त्रिकाल भगवान आत्मा मुक्तस्वरूप ही है। आहाहा! वस्तु में बन्ध कैसा? बन्ध तो पर्याय का आया? बन्ध पर्याय तो उसमें है नहीं। बन्धसहित द्रव्य मानना, वह तो मिथ्यात्व में ले लिया। समझ में आया? बन्धसहित कहो या अशुद्धतासहित कहो या रागसहित कहो, एक ही बात है। समझ में आया? भगवान आत्मा अबन्धस्वरूपी प्रभु.. अबन्धस्वरूप कहो तो अबन्ध तो निषेध से आया; मोक्षस्वरूप कहो। वह तो मोक्षस्वरूप ही है। ऐसा भगवान आत्मा मोक्षस्वरूप परमात्मा, आचार्यों ने ऐसा स्वीकार किया है कि जीव का मोक्ष नहीं होता। डालचन्दजी! गजब बात!

देखो! यहाँ दिगम्बर की बात सनातन सत्य है, उसे यहाँ प्रसिद्ध करते हैं। समझ में आया? परन्तु मोक्ष समझ में आता है। समझ में आता है, मोक्ष समझ में आता है। मात्र जो विकल्पसहित जो मैं हूँ - ऐसा माना था; वह मान्यता बन्धसहित की जो मान्यता थी, मान्यता थी, वह छूट गयी। मूलचन्दभाई! यह कभी वहाँ सुना भी नहीं होगा। इतने वर्ष वाड़ा में बिताये। अब तो इसे उत्साह होता है न! आहाहा!

भगवान! यहाँ तो कहते हैं, देखो! सीधी बात है, बहुत सीधी है कि जो विकल्प-राग है, वह भावबन्ध है। द्रव्यबन्ध की बात छोड़ दे। कर्म का बन्ध इसमें है ही नहीं, वह तो पर है। विकल्प जो राग है, वह भावबन्ध है। भावबन्ध क्यों माना? कि मैं मुक्त नहीं, बन्ध हूँ - ऐसी मान्यता में वह राग खड़ा था। मैं रागसहित, भावबन्धसहित हूँ - ऐसी मान्यता की थी। समझ में आया? धन्नालालजी! देखो, आहाहा! क्लास के लिये रखा था। कहा, इस क्लास में सुने तो सही। यहाँ जंगल में ३६ वाँ वर्ष हुआ, जंगल में ३६ वाँ चातुर्मास है। सुने तो सही। यह तो जंगल था न। यह तो अब बस गया। यहाँ तो जंगल था, अकेला मकान था। हमारे जीवराजजी महाराज को नीचे से कोई जंगल का जानवर खा गया था। जंगल में जानवर घुस गया था क्योंकि यह तो खुला था, न उस समय तो... क्या

कहते हैं उसे ? बण्डी, बण्डी ही नहीं थी। अकेला मकान,अकेला मकान जंगल में अकेला (मकान) बण्डी तो बाद में हुई। खुला था, उसमें जीवराजजी नीचे कोई सियार या कोई जंगली जानवर नीचे घुस गया था। जंगल था, एकदम जंगल। मकान तो कहाँ था ? यहाँ ३६ वें वर्ष में सुने तो सही। यह ख्याल आया था, हों! ६ और ३ = ९ ! इस छत्तीसवें वर्ष में वीतराग का मार्ग कुछ सुने (तो सही)।

(यहाँ) कहते हैं कि मोक्ष समझ में आता है, मोक्ष होता नहीं। समझ में आया ? वह इस प्रकार कि जीव शुद्धस्वरूपी है। भगवान आत्मा तो परमशुद्ध स्वभाववस्तु है। शुद्धस्वरूपी है। अशुद्धस्वरूपी तो मान्यता में किया था। आहाहा ! त्रिकाल वस्तु शुद्धस्वरूप ही है। जीव शुद्धस्वरूप है, उसे बन्ध नहीं होता। शुद्धस्वरूप में अशुद्धता आती ही नहीं। बन्ध का अर्थ (यह कि) शुद्धस्वरूपी भगवान में भावबन्ध अशुद्धता होती ही नहीं। आहाहा ! देखो न ! कैसी बात की है ! दिगम्बर आचार्यों ने ऐसा माना है – ऐसा कहकर सन्तों की बात परम सत्य प्रसिद्ध किया है। समझ में आया ? ऐसी बात अन्यत्र कहीं नहीं होती।

कहते हैं कि शुद्ध स्वरूपी है, उसे बन्ध हुआ नहीं तो फिर मोक्ष होना कहाँ रहता है ? जहाँ बन्ध हुआ नहीं, फिर मोक्ष होना कहाँ से आया ? आहाहा ! समझ में आया ? भगवानजीभाई ! मार्ग यह है। आहाहा ! कहते हैं कि शुद्धस्वरूपी है, उसे अशुद्धता हुई ही नहीं। बन्ध हुआ नहीं, इसका अर्थ क्या ? अशुद्धता है ही नहीं, अशुद्धता हुई ही नहीं। आहाहा ! तो फिर मोक्ष होना कहाँ रहता है ? यह हिन्दी होगा, अपने हिन्दी है। 'वढ़वा' वाले पण्डित ने किया है। जगदीशचन्द ! अपने यहाँ यह चलता है।

परन्तु इसने माना है, देखो ! भगवान आत्मा शुद्धस्वरूपी बन्ध में है ही नहीं। शुद्ध है, वह अशुद्ध हुआ ही नहीं – ऐसा कहते हैं। तथापि माना है कि मैं बँधा हूँ। मान्यता में बन्ध हुआ है – ऐसा माना है क्योंकि वस्तु तो शुद्ध त्रिकाली ज्ञायकभाव है, उसमें मान रखा है कि रागसहित हूँ, रागसहित हूँ, बन्धसहित हूँ–ऐसी मान्यता थी। आहाहा ! मणिभाई ! कहो, समझ में आया इसमें ? समझाये छे ? यह हमारी गुजराती भाषा है। समझ में आया या नहीं ?

माना है कि मैं बँधा हूँ। भाषा देखो ! माना है कि मैं अशुद्ध हूँ, मैं अशुद्ध हूँ, अशुद्ध हूँ या बँधा हूँ, एक ही बात है। समझ में आया ? यह मान्यता विचार द्वारा समझ में आती

है, यह माना था। भगवान शुद्धस्वरूपी प्रभु, यह शुद्ध वह द्रव्य वस्तु अशुद्ध हुई ही नहीं परन्तु मान्यता में माना कि मैं अशुद्ध हूँ, - ऐसी मान्यता में मैं बन्ध (स्वरूप हूँ - ऐसा माना था)। अशुद्ध कहो या बन्ध कहो, एक ही बात है। मैं बन्धसहित हूँ - ऐसा माना था, यह मान्यता विचार द्वारा समझ में आती है। दूसरे किसी क्रियाकाण्ड नहीं अथवा यह व्यवहार कषाय की मन्दता, व्रत की क्रिया की, उससे (हुआ) - ऐसा नहीं है। सेठ! यह तुम्हारे दान... सेठिया सब दस-बीस हजार दान दे। ये थोड़ा दे, इतना सब कोई नहीं दे। लाख, दो लाख, पाँच लाख नहीं दे, दस-बीस हजार खर्च करे। लाख रुपये अभी खर्च किये थे न? समझ में आया? पचास-साठ लाख वाला कहीं पचास लाख दे देगा?

यहाँ तो कहते हैं कि मेरे हैं, यह मान्यता ही मिथ्यात्व है। आहाहा! समझ में आया? यह तो ठीक, परन्तु इसमें जो राग है, उस रागसहित हूँ, रागसहित हूँ, मैं बँधा हुआ हूँ - ऐसी मान्यता मिथ्यात्व में है। वह विचार से (समझ में आती है)। ओहो! इस चीज़ में बन्ध है ही नहीं, इसमें अशुद्धता है ही नहीं। समझ में आया? कल्पना थी, मान्यता (थी) आहाहा! समझ में आया? मिथ्यामान्यता। बन्धसहित हूँ, वास्तव में यह इसका विषय हुआ ही नहीं। समझ में आया? मिथ्यामान्यता का यह विषय हुआ नहीं। आहाहा! माना कि मैं अशुद्ध हूँ, मैं बन्ध हूँ, आहाहा! यह मिथ्यात्व विचार द्वारा समझ में आता है। ज्ञान द्वारा समझ में आता है कि मैं बन्ध नहीं। देखो! अभी सम्यग्दर्शन की, सम्यग्ज्ञान की बात चलती है, चौथे गुणस्थान की बात चलती है। आहाहा!

मुमुक्षु : गुरु के ज्ञान द्वारा?

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा के द्वारा। आत्मा गुरु, आत्मा तीर्थ, आत्मा देव, और आत्मा धर्म, आत्मा देव। कहो, समझ में आया? ऐसी बात है या नहीं? पन्ना है या नहीं? यह समझ में आता है कि मुझे बन्धन नहीं है। आहाहा! देखो! यह वस्तु। देखो, अशुद्ध-अशुद्ध मैं हूँ - ऐसी मिथ्यात्व की मान्यता थी। मान्यता थी, हों! आहाहा! क्या शैली, देखो तो सही! यह वस्तु की, स्वतन्त्र वस्तु ऐसी है, उस तत्त्व में अशुद्धता कैसी? भावबन्ध कैसा? भावबन्ध मैं हूँ - ऐसी मान्यता तो खड़ी की थी। उसमें नहीं। समझ में आया? ऐसी मान्यता तो खड़ी की थी। आहाहा! बनावटी, साहूकार के इसके वेष करते हैं या नहीं?

बनावटी वेष अज्ञानी ने खड़ा किया है। आहाहा! उसका स्वरूप तो मुक्त है। राग और विकल्प के बन्ध से रहित है। आहाहा! ऐ.. मनसुखभाई! समझ में आता है या नहीं? इस तुम्हारे राजकुमार को ऐसा सूक्ष्म समझ में आता है या नहीं? वहाँ पालेज में कहीं मिले ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : अब यहाँ लेने आये हैं न।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो मनसुखभाई बहुत कहते हैं इसे।

मुमुक्षु : एक बार माल चख जाये तो बारम्बार आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसे जिज्ञासा हुई तब आया न। आहाहा! परन्तु क्या बात! अन्दर समुद्र उछला! आनन्दकन्द प्रभु है – ऐसी जहाँ मान्यता ज्ञान से हुई कि मुझे बन्धन नहीं क्योंकि बन्ध और अशुद्धता तो भिन्न तत्त्व है, उसकी द्रव्य के साथ एकता नहीं है। समझ में आया? यह मुझे बन्धन नहीं है अर्थात् मुझे अशुद्धता नहीं है। आहाहा! ए जयकुमारजी! बहुत सरस? यह तुम्हारी सब गड़बड़ में से यह सब बात (आयी है)। यह पन्ना पढ़ने का भाव.. ज्ञानचन्दजी चले गये। यह तो रुक गया। इसे तो जिज्ञासा है। आहाहा! क्या कहते हैं?

दिगम्बर आचार्यों का ऐसा मानना है कि जीव का मोक्ष नहीं होता। आहाहा! क्योंकि उसमें अशुद्धतारूपी बन्धनभाव नहीं है। मान्यतारूप से माना था कि मैं अशुद्ध और भावबन्धरूप हूँ, यह ज्ञान द्वारा समझ में आया कि मैं राग नहीं, मैं अशुद्धता नहीं, मैं तो त्रिकाली आनन्दकन्द हूँ। चिमनभाई! यह तो समझ में आये ऐसा है, हों! सादी भाषा में है परन्तु भाव भले ऊँचे हों। आहाहा!

मुझे बन्धन नहीं है। धर्मी को जहाँ स्वभाव पर दृष्टि पड़ी, वहाँ वह तो मुक्तस्वरूप है, मुझे बन्धन है ही नहीं। आहाहा! अशुद्धता है ही नहीं। बन्धन कहो या अशुद्धता कहो, एक बात है या नहीं? ऐ... धन्नालालजी! अशुद्धता कहो या बन्धन कहो, दोनों एक बात है या अन्तर है? भाई! आस्रवसहित हूँ – ऐसा कहो, बन्धसहित हूँ कहो, मैं बँधा हुआ हूँ कहो, अशुद्धतासहित हूँ कहो, यह मान्यता थी। आहाहा! समझ में आया? यह मान्यता शुद्धस्वरूप समझने से नहीं रहती। ऐसी मान्यता, शुद्धस्वरूप भगवान आत्मा ज्ञात हुआ तो यह मान्यता—अशुद्ध हूँ, भावबन्ध है—यह बात नहीं रहती। समझ में आया? देखो! सम्यग्दृष्टि की ध्येय वस्तु बन्धरहित है। आहाहा! समझ में आया?

इसमें ऐसा लिखा है, शुद्धस्वरूप समझाने से... परन्तु समझने से चाहिए। मूल शब्द दूसरी जगह ऐसा शब्द था। यह मान्यता-जो मिथ्यात्व की गाँठ थी कि मैं अशुद्ध हूँ... अशुद्ध तत्त्व तो भिन्न है, तो ज्ञायक के साथ मान्यता से अशुद्धता मिलाना। आहाहा! समझ में आया? मानता है। तो वह मान्यता शुद्धस्वरूप समझने से नहीं रहती अर्थात् मोक्ष समझ में आता है। मोक्ष समझ में आता है। मोक्ष समझ में आता है, मोक्ष होता नहीं। समझ में आया? पण्डितजी!

यह बात शुद्धनय की-निश्चयनय की है। वास्तविक तत्त्वदृष्टि का विषय है। पर्यायार्थिकनयवाले आचरण करे तो भटक मरे। राग पर लक्ष्य है पर के प्रति लक्ष्य है और फिर आचरण में कहे कि हम शुद्ध हैं, शुद्ध हैं - ऐसा कहेगा मर जायेगा, चार गति में भटकेगा - ऐसा कहते हैं। यह तो श्रीमद् राजचन्द्र, ४९८ पृष्ठ पर है। ३२वाँ वर्ष, ४९८ पृष्ठ, उसमें वर्ष (प्रमाण) है न? समझ में आया? ठीक आया, आहाहा!

एक तत्त्व में दूसरे तत्त्व को माना था - ऐसा कहते हैं। एक तत्त्व में दूसरा तत्त्व मेरा है - ऐसा माना था, हुआ नहीं - ऐसा कहते हैं। ज्ञायक तो ज्ञायक ही त्रिकाल रहा। प्रवचनसार में आता है न? भाई! प्रवचनसार में २०० वीं गाथा, अन्त में (आता है)। भगवान आत्मा ज्ञायक शुद्ध तो शुद्ध ही रहा है, ज्ञायक तो ज्ञायक ही रहा है; अन्य प्रकार से अध्यवसित हुआ है, यह बात यहाँ है। ओहोहो! ठीक... यह तो अभी ख्याल आया। कहाँ का कहाँ... लो, २०० गाथा, देखो!

शुद्ध आत्मा सहज अनन्त शक्तिवाले ज्ञायकभाव द्वारा एकरूपता को नहीं छोड़ता। अनादि संसार से इस स्थिति से ज्ञायकभावरूप रहा है। टीका अमृतचन्द्राचार्यदेव की है। २०० गाथा। प्रवचनसार २०० गाथा की टीका। क्या कहा? मैं तो अनादि संसार से ज्ञायकभावरूप ही आत्मा रहा है। टीका में है। समझ में आया? और ऐसा होने पर भी मोह द्वारा अन्यथा अध्यवसित होता है। लो, भाई! यह तो बराबर आया। समझ में आया?

आचार्य-दिगम्बर आचार्यों ने यह बात ली है। कहाँ का कहाँ आया, लो! यह तो पता भी नहीं, हों! आचार्यों ने (कहा) कि आत्मा तो ज्ञायकभाव ही रहा है। वह ज्ञायक मिटकर अन्यथा नहीं हुआ अनादि से, परन्तु मोह द्वारा अर्थात् मिथ्यात्व द्वारा... ओहोहो!

देखो! वाह! कहाँ का कहाँ मिला, देखो! सहज कहाँ मिला! मोह-मिथ्यात्व द्वारा अन्यथा अध्यवसित होता है। मिथ्यात्व द्वारा दूसरे प्रकार से जानने में आता है। कल्पना... समझ में आया? देखो, यह अमृतचन्द्राचार्यदेव की टीका। दिगम्बर सन्तों ने ऐसा कहा कि ज्ञायक तो ज्ञायक ही रहा है। समझ में आया? परन्तु मिथ्यात्व द्वारा अन्यथा अध्यवसित, अन्यथा निर्णय अज्ञानी ने किया है (परन्तु) ऐसा है नहीं। मूलचन्दभाई! यह ऐसी बातें हैं। आहाहा! दिगम्बर सन्तों ने केवलज्ञान के पेट खोलकर रख दिया है परन्तु इसकी दृष्टि जाती नहीं और यह बात अन्दर प्रविष्ट होती नहीं। अन्दर खटक... खटक (रहती है) मैं अशुद्ध हूँ, मैं अशुद्ध हूँ, मैं अशुद्ध हूँ। समझ में आया?

मुमुक्षु : गुरु मिलेंगे तब जँचेंगी?

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा अन्दर में ध्यान करेगा तो जँचेगी, तब गुरु मिले - ऐसा व्यवहार से आरोप दिया जाता है। निश्चय हुआ तो व्यवहार में आरोप दिया जाता है। समझ में आया?

देखो! संस्कृत है, हों! 'पृष्ठ १२९' माना था। यह मैं, मेरी मान्यता में जो था कि मैंने अन्य अध्यवसाय किया कि मैं अशुद्ध हूँ, उस मोह को मैं उखाड़ डालता हूँ। उस मोह को मैं छोड़ देता हूँ, मैं अशुद्ध हूँ नहीं। ऐ... वजुभाई! देखो! यहाँ की साक्षी दी। आचार्यों ने कहाँ कहा है? यह कहा है, भाई! २०० वीं गाथा में कहा है। लो! समझ में आया? यहाँ फिर साक्षी मिल गयी। कहाँ का कहाँ आया? ओहो! मोह से अन्य रीति से अध्यवसित होता है - ऐसा हुआ नहीं। है तो ज्ञायकरूपी ज्ञायकभाव, मिथ्यात्व से अन्य अध्यवसाय-निर्णय किया है, उस मोह का निर्णय छोड़ दे। है वह है। समझ में आया?

अपने यहाँ आया, देखो! यहाँ रागादि रहित (कहा है), उसमें सब आया, **समस्त रागादि से रहित....** अर्थात् कोई ऐसा कहे कि ये रागादि... अरे! सुन तो सही! त्रिकाल राग से रहित ही है। समझ में आया? भगवान आत्मा चैतन्य ज्ञायकभाव तो त्रिकाल ऐसा का ऐसा रहा है। मोह द्वारा, मिथ्यात्व द्वारा जो अन्यथा निर्णय किया था कि मैं अशुद्ध हूँ, मैं अशुद्ध हूँ, मैं भावबन्ध हूँ-ऐसा (निर्णय) किया था, वह छोड़ दिया। उस **समस्त रागादि से रहित होने के कारण शुद्ध-उपादानकारणभूत होने से....** यह पर्याय।

पर्याय में अशुद्धता 'मैं हूँ' - ऐसी जो दृष्टि थी, वह छूट गयी क्योंकि त्रिकाल स्वभाव सन्मुख का भेद-विषय करने से, उसे ध्येय बनाने से छूटता है, छूटता है। छोड़ता नहीं, छूट जाता है। आहाहा! भ्रान्ति-भ्रम जो है कि मैं अशुद्ध हूँ, बन्ध हूँ, उसकी जो उत्पत्ति हुई है, उस उत्पत्ति का नाश तो दूसरे समय सहज होता ही है, करना नहीं पड़ता। उसमें निमित्तपना भी नहीं। क्या कहा?

फिर से, जो मोह से एकत्व माना था - ऐसी जो एक समय की पर्याय (का) दूसरे समय में व्यय होगा, होगा और होगा ही। उसमें कोई आत्मा का पुरुषार्थ किया तो निमित्त हुआ और नाश हुआ - ऐसा नहीं है। क्षणिक के अर्थ में थोड़ा मर्म है कि यह मोह जो अध्यवसाय निश्चित किया था, वह भाव तो भाव है। अब यह तो पर्याय है तो दूसरे समय पर्याय का नाश होता है, परन्तु उस पर्याय में अपने शुद्धध्येय का परिणमन होकर जो मिथ्यात्व की उत्पत्ति होनेवाली थी, वह नहीं हुई, उसे मिथ्यात्व का नाश किया - ऐसा कहने में आता है। यह मर्म है। ऐ... हीराभाई! कहो, समझ में आया?

शुद्ध उपादान पर्याय में ध्रुव को ध्येय में लिया है कि मैं तो शुद्ध त्रिकाल ज्ञायकभाव हूँ-ऐसा लिया तो मिथ्यात्व की उत्पत्ति नहीं हुई। पहले जो मिथ्यात्व था, वह तो उसके कारण से नाश होता ही है, वह तो पर्याय का धर्म है कि दूसरे समय नहीं रहती। समझ में आया? परन्तु जो मिथ्यात्व का निर्णय था, वह ज्ञायकभाव का निर्णय - सन्मुख हुआ तो मिथ्यात्व की उत्पत्ति नहीं हुई, उसे मिथ्यात्व का नाश किया - ऐसा कहने में आता है। आहाहा! नाश किसे करे? भगवान आत्मा नाश करे - ऐसा तो आत्मा में है नहीं। राग के नाश का कर्तापना आत्मा में है नहीं। नाश का कर्तापना इसमें नहीं, हों! आहाहा! ऐसी चीज़ है। समझ में आया? बहुत बात की है, हों!

पहले बोल में ऐसा लिया, शुरुआत में लिया न कि कर्ता-भोक्ता है, भाई! पहले शुरुआत में आया न? अकर्तृत्व-अभोक्तृत्व पहले (आ गया)। उसमें ऐसा लिया कि भगवान आत्मा, जैसे यहाँ अध्यवसाय से माना था, वैसा भगवान आत्मा त्रिकाली शुद्ध है, वह पर का कर्ता तो नहीं परन्तु राग का कर्ता भी नहीं। समझ में आया? यदि राग का कर्ता द्रव्य हो तो त्रिकाली राग करने में ही उसकी दृष्टि हो जाये, कभी सम्यग्दर्शन हो नहीं। समझ में आया? यही आया कि अशुद्धता विकार जो है, वह तो मान रखा था कि मेरा है,

वह दृष्टि छूट गयी तो आत्मा, राग का कर्ता तो नहीं, परन्तु राग का नाश करता भी नहीं। क्योंकि राग के नाश कर्ता में भी आत्मा निमित्त है – ऐसा है नहीं। कर्तापने में निमित्त नहीं तो नाशकर्ता में भी निमित्त नहीं। आहाहा! समझ में आया?

इस राग का कर्ता अज्ञानरूप से माना था, परद्रव्य की पर्याय का तो कर्ता नहीं परन्तु परद्रव्य की पर्याय में जो राग और कम्पन निमित्त होते हैं, उनका कर्ता ज्ञानी नहीं। अज्ञानी मानता है कि राग और कम्पन मेरे हैं। ऐसी मान्यतावाला जीव दूसरे द्रव्य की पर्याय के काल में इस मान्यतावाले जीव की पर्याय निमित्त होती है। निमित्त कहने में आती है। आहाहा! समझ में आया? यह तो वह की वह बात खड़ी हुई।

राग और कम्पन है, वह अशुद्धता है, लो! ठीक है? अशुद्धता सहित हूँ – ऐसी जिसकी मान्यता है, वह मिथ्यादृष्टि, राग और कम्पन का कर्ता होता है और उस मिथ्यादृष्टि का राग और कम्पन अशुद्धपर्याय, दृष्टि वहाँ है इस कारण से जगत की, जड़ की पर्याय होती है, उसमें अज्ञानी के (राग को) निमित्तकर्ता का आरोप देते हैं। ज्ञानी तो निमित्तकर्ता भी नहीं है। आहाहा! क्योंकि राग और कम्पन से भिन्न है। वह अशुद्धभाव है न! भावबन्ध है न! तो भावबन्ध तो माना था, वह मान्यता छूट गयी। मैं तो ज्ञायक शुद्ध चैतन्यद्रव्य हूँ – ऐसी दृष्टि हुई तो कम्पन और राग से मुक्त हुआ। वह राग का कर्ता भी नहीं और राग का नाश कर्ता भी नहीं। समझ में आया? आहाहा! गजब बात, भाई! आहाहा! ओहो!

कहते हैं **शुद्ध-उपादानकारणभूत होने से मोक्ष का कारण है...** कौन? ये तीन भावरूप मोक्षमार्ग, वह अन्तर ध्रुवस्वभाव का अवलम्बन लेकर मिथ्यात्व की पर्याय का नाश हो गया, उत्पन्न नहीं हुआ, वह तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान की शान्ति की पर्याय उत्पन्न हुई, उन तीन भावरूप है, वह शुद्ध उपादानकारणभूत पर्याय है। वह मोक्ष का कारण है। मोक्ष का कारण है, देखो! रागादि विकल्प-फिकल्प मोक्ष का कारण नहीं। मोक्ष के कारण दो हैं – ऐसा नहीं, ऐसा यहाँ लिया है। मोक्ष का कारण एक ही है, दूसरा मोक्ष का कारण नहीं। आहाहा! कौन जाने ऐसी गड़बड़ करते हैं न! मोक्ष का कारण कहा है। अरे! सुन तो सही! यह तो कथन की शैली है। निरूपण दो प्रकार से है, वस्तु दो प्रकार से नहीं। क्या कहते हैं? देखो न! क्योंकि व्यवहाररत्नत्रय तो उदयभाव है। समझ में आया? उदयभावसहित हूँ – ऐसा जहाँ तक मानता है, वहाँ तक तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो उदयभाव तो नहीं परन्तु यह एक समय की शुद्धपर्याय हुई, उससे रहित मेरी चीज़ है - ऐसी दृष्टि हुई तो निर्मल पर्याय उत्पन्न हुई। मलिन पर्याय उत्पन्न नहीं हुई और निर्मल पर्याय उत्पन्न हुई, वह मोक्ष का कारण निर्मल पर्याय है। निश्चयमोक्षमार्ग, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक पर्याय ही मोक्ष का कारण है; व्यवहाररत्नत्रय मोक्ष का कारण नहीं है - ऐसा यहाँ सिद्ध कर दिया है। इसमें है या नहीं? आहाहा!

मुमुक्षु : है वह हमें तो दिखता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अब देखो। देखनेवाला देखेगा, दूसरा कौन देखेगा? समझ में आया?

मुमुक्षु : इसीलिए तो आपके पास आये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : पास तो स्वयं के समीप जाना, वह पास जाना है। आहाहा!

परन्तु शुद्धपारिणामिक नहीं... मोक्ष का कारण त्रिकाली द्रव्यस्वभाव नहीं। आहाहा! समझ में आया? मोक्ष का कार्य, उसका कारण पारिणामिक ध्रुव चीज़ की दृष्टि, ज्ञान और रमणता जिसे यहाँ तीन भाव कहा, वह मोक्ष का कारण है। व्यवहार, मोक्ष का कारण नहीं; द्रव्य, मोक्ष का कारण नहीं। क्या कहा? व्यवहार कारण नहीं, वह तो रागादि रहित में आ गया। अब यहाँ शुद्धपारिणामिक नहीं-इसमें द्रव्य आ गया। समझ में आया? गजब! परन्तु अलौकिक गाथा रची है, हों! वस्तु के स्वरूप को आचार्यों ने जंगल में रहकर... आहाहा! खजाना खोल दिया है, खजाना! आहाहा!

यह **शुद्धपारिणामिक नहीं...** क्या नहीं? यह मोक्ष का कारण नहीं। कौन? त्रिकाली द्रव्यस्वभाव मोक्ष का कारण नहीं है। वह तो त्रिकाल मोक्षस्वरूप ही है। समझ में आया? आहाहा!

जो शक्तिरूप मोक्ष है,... लो! अब पैराग्राफ आया। **जो शक्तिरूप मोक्ष है,...** शक्ति अर्थात् पूर्ण मुक्तस्वरूप ध्रुव है, वह मोक्ष तो पहले से है, अनादि से वह तो शुद्ध पारिणामिक है। शक्तिरूप मोक्ष जो त्रिकाल है, जो यहाँ कहा कि आत्मा की मुक्ति होती नहीं; मुक्त हूँ - ऐसा समझ में आता है। राग से बँधा नहीं। मान्यता में था कि राग से बँधा हूँ, अशुद्धता

से बँधा हूँ। आहाहा! देखो, दृष्टि के विषय में कहाँ जोर जाता है? और अन्य में पर्याय में जोर जाता है, इसका इसे पता नहीं पड़ता। ऐ... जयकुमारजी! सूक्ष्म भाव है।

शास्त्र से चर्चा करते-करते तो दोष देखा है या नहीं? दोष देखा है या नहीं? अब, सुन तो सही। आहाहा! आता है वह जाने, ज्ञात हो, वह ज्ञात हो उसका जोर क्या? ज्ञात होता है, इसलिये दोष का नाश होता है? दोष के नाश की उत्पत्ति तो स्वभाव का आश्रय लेते हैं तो उत्पत्ति नहीं होती। समझ में आया? यह तो व्यवहार के कथन ऐसे आते हैं। दोष की उत्पत्ति न हो, वह किसके आश्रय से? भगवान चिदानन्द प्रभु शुद्ध ध्रुव का माहात्म्य आया और उस पर दृष्टि पड़ी तो (दोष) उत्पन्न नहीं होते। जितने अंश में अन्तर एकाग्रता होती है, उतने अंश में अशुद्धता उत्पन्न नहीं होती। अशुद्धता के नाश का उपाय यह आत्मद्रव्य है। समझ में आया?

कहते हैं कि **जो शक्तिरूप मोक्ष है,...** यह तो मोक्ष का कारण कहा न? तो मोक्ष क्या? जो पर्याय में मोक्ष होता है, उसकी बात चली और शक्तिरूप जो मोक्ष त्रिकाल है, पहले जो कहा कि मोक्षरूप ही पारिणामिकस्वभाव है, वह तो त्रिकाल मोक्षस्वरूप ही है, **वह तो शुद्धपारिणामिक है,** वह **प्रथम से ही विद्यमान है।** वह मोक्ष तो प्रथम से ही त्रिकाल विद्यमान है। आहाहा! अनादि से है। समझ में आया? आहाहा! हमारे राजमलजी बहुत प्रसन्न होते हैं, देखो!

प्रथम से ही विद्यमान है। क्या कहते हैं? मोक्ष तो पहले से है, शक्तिरूप मोक्ष तो पहले से है। आहाहा! समझ में आता है न रामदासजी? ऐई! प्रकाशदासजी कहाँ गये? पन्ने हैं या नहीं? (है।) अच्छा।

यह तो अनादि की भूल हो, हो उससे क्या है? मुझमें भूल ही नहीं यहाँ तो ऐसा कहते हैं। समझ में आया? भूल ही नहीं, भगवान में भूल कैसी? भगवान को भूलवाला मानना, वह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : आप क्या कहते हो, वह कुछ समझ में नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कह रहे हैं? अच्छा। यह कह रहे हैं कि भगवान शुद्धस्वरूपी प्रभु को अशुद्ध कहना, भूलवाला कहना, भूलवाला द्रव्य कहना, वह मिथ्यात्वभाव है।

आहाहा! वह तो अशुद्धतारहित को अशुद्धता मानना या भूलरहित को भूलसहित मानना दोनों एक ही चीज़ है। यह तो दूसरे प्रकार से कथन हुआ। आहाहा! कहते हैं कि ऐसा मोक्ष का मार्ग? ऐसी कथा होगी? उसमें ऐसा और वैसा और अमुक....

मुमुक्षु : कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने तो पाँचवीं गाथा में प्रतिज्ञा की है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मैं तो शुद्धस्वरूप कहूँगा। तो कैसा शुद्ध है? कि जिसमें प्रमत्त -अप्रमत्त पर्याय नहीं है - ऐसा वह शुद्ध है। यह छठी गाथा से शुरु कर दिया है। कैसा शुद्ध है कि जिसे जानना चाहिए? भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव उत्तर देते हैं। परमेश्वर हैं न! आचार्यपद में है न! पंच परमेष्ठी में हैं। आहाहा! उसे हम शुद्ध कहते हैं कि जिसमें प्रमत्त और अप्रमत्त, निर्मलपर्याय और मलिनपर्याय जिसमें नहीं, उसे हम शुद्ध कहते हैं। प्रमत्त-अप्रमत्त चौदह गुणस्थान ही जिसमें नहीं। आहाहा! समझ में आया? उसे हम शुद्ध कहते हैं। उस शुद्ध सन्मुख की सेवा करने से निमित्त का लक्ष्य और पर का लक्ष्य छोड़कर, द्रव्य के लक्ष्य में जो आया, सेवा की कि यह शुद्ध है। समझ में आया? तथापि यह शुद्ध है - ऐसी पर्याय भी द्रव्य में नहीं है। आहाहा! यह तो उसमें बहुत स्पष्टीकरण आ गया। समझ में आया?

प्रथम से ही विद्यमान है। 'ही' (कहा है) भगवान! तेरी मुक्ति तो पहले से-अनादि से है।

मुमुक्षु : जैनदर्शन में 'ही' प्रयोग नहीं होता, महाराज!

पूज्य गुरुदेवश्री : यह 'ही' प्रयोग किया है, देखो! यह क्षुल्लकजी ने कहा है कि इसमें ही आया। जोरदार आया, 'ही' आया न ही! नित्य है तो नित्य ही है। नित्य है, इसलिये अनित्य भी है-ऐसा है? शुद्ध ध्रुव, वह ध्रुव ही है। फिर अशुद्ध भी है - ऐसा है नहीं। (यह) सम्यक् एकान्त। मार्ग ऐसा है, भगवान! समझ में तो ले, बात ज्ञान में तो ले, इसे ख्याल में तो ले कि मार्ग... आहाहा! अलौकिक मार्ग, लौकिक में कहीं मिलता नहीं। सम्प्रदाय में भी दिगम्बर सम्प्रदाय के सिवाय बात नहीं। दिगम्बर सम्प्रदाय में तो अभी सम्प्रदाय के नाम से क्या होता है? शरीर की क्रिया से धर्म होता है-ऐसे तो प्रश्न चलते हैं। गजब बात, प्रभु! जैनदर्शन में ऐसी बात कलंक है। आहाहा! ऐई शोभालालजी! शरीर की

क्रिया से धर्म होता है। अरे! भगवान! क्या कहता है? प्रभु! आहाहा! अशुद्धता दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम से धर्म होता है, यह भी वस्तु में नहीं है। आहा! और यह अशुद्धता वस्तु में नहीं है। अशुद्धता से धर्म होता है, यह तो नहीं परन्तु यह अशुद्धता वस्तु में नहीं। समझ में आया? ऐसी वस्तु की दृष्टि, ज्ञान और स्थिरता मोक्ष का कारण है; परमस्वभाव नहीं। क्योंकि शक्तिरूप मोक्ष तो त्रिकाल है। **यह तो व्यक्तिरूप मोक्ष का विचार चल रहा है।** प्रगटरूप दशा की बात चल रही है। विशेष कहेंगे..... पैराग्राफ बाद में आयेगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आत्मस्वरूप की यथार्थ समझ सुलभ है !

अपना आत्मस्वरूप समझना सुगम है; किन्तु अनादि से स्वरूप के अनाभ्यास के कारण कठिन मालूम होता है। यदि यथार्थ रुचिपूर्वक समझना चाहे तो वह सरल है।

चाहे जितना चतुर कारीगर हो, तथापि वह दो घड़ी में मकान तैयार नहीं कर सकता, किन्तु यदि आत्मस्वरूप की पहचान करना चाहे तो वह दो घड़ी में भी हो सकती है। आठ वर्ष का बालक, एक मन का बोझा नहीं उठा सकता, किन्तु यथार्थ समझ के द्वारा आत्मा की प्रतीति करके केवलज्ञान को प्राप्त कर सकता है। आत्मा, परद्रव्य में कोई परिवर्तन नहीं कर सकता, किन्तु स्वद्रव्य में पुरुषार्थ के द्वारा समस्त अज्ञान का नाश करके, सम्यग्ज्ञान को प्रगट करके, केवलज्ञान प्राप्त कर सकता है। **स्व में परिवर्तन करने के लिए आत्मा सम्पूर्ण स्वतन्त्र है, किन्तु पर में कुछ भी करने के लिए आत्मा में किञ्चित्मात्र सामर्थ्य नहीं है। आत्मा में इतना अपार स्वाधीन पुरुषार्थ विद्यमान है कि यदि वह उल्टा चले तो दो घड़ी में सातवें नरक जा सकता है और यदि सीधा चले तो दो घड़ी में केवलज्ञान प्राप्त करके सिद्ध हो सकता है।**

—पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी